Chap-9

नवम् अध्याय

उपसंहार

1. अध्ययन का सारांश
2. निष्कर्ष

उपसंहार

'नाटक' मूलतः अभिनय की कला है, और रंगमंच के साथ इसका सीधा सम्बन्ध है। प्राचीनकाल से लेकर हिन्दी के आधुनिक रंगमंच तक विकास के विभिन्न चरणों की एक सुदीर्घ परम्परा है। भरत का नाटक और उसके रंगमंच पर लिखा वृहद ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' इस बात का सूचक है कि नाट्य रंगमंच की समझ, उसके विकसित स्वरूप की एक समृद्ध परम्परा भारत में विद्यमान थी।

साठोत्तर युग नाटक एवं रंगमंच के प्रयोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण समय रहा है। परम्परागत रंगमंच को नयी विचारधारा के कलेवर में, नये प्रयोगों एवं नये ढंग की प्रस्तुतियों से इसी दौर ने सजाया है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में काव्य को दो रूपों में बाँटा गया है - दृश्य एवं श्रव्य। नाट्य साहित्य का आनन्द हमें पढ़कर भी हो जाता है किन्तु इसकी रंगमंच पर प्रस्तुति ही इसकी विशेषता को प्रदर्शित करती है। भारतीय नाट्यशास्त्र में वृत्तियों के विवेचन से भी यह बात प्रमाणित होती है। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र से पहले भी हमें रंगमंच और नाट्यों की रूपरेखा, संवादसूक्तों से मिलती है। 'त्रिपुरदाह', 'सोमक्रमण' की घटना, देवासुर संग्राम में महेन्द्रविजयोत्सव आदि के समय यूपों और जर्जर ध्वज को गाड़ कर नाट्य खेलने की प्रथा थी। देवताओं के अनुरोध पर रंगशाला व उसके विभागों का निर्माण भी किया गया। बौद्धकाल में भी यज्ञ आदि धार्मिक क्रियाओं के समय नाट्य खेलने के प्रमाण मिले हैं।

प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा में हमें जिस रंगमंच का उल्लेख मिलता है वह विश्वकर्मा द्वारा प्रतिस्थापित था। यह रंगमंच उस समय केवल देवताओं के खेलने के लिए व उनके मनोरंजन के लिये था। इस रंगमंच की स्थापना ही इस कारण हुई थी कि अगर नाटक लिखा जाय तो उसे खेला भी जाना चाहिये। रंगमंच को विभागों में बाँट दिया गया था। उस समय वर्ण-व्यवस्था को भी ध्यान में रखा जाता था। रंगमंच पर अगर नाटक खेला जाता तो उनके बैठने की व्यवस्था अलग-अलग कर दी जाती

थी। इससे आम जनता में 'अपना' भी रंगमंच बने ऐसी भावना उत्पन्न हुई। इसी भावना ने लोकमंच के रूप में जन्म लिया।

देवशाला में नाटक देखने के लिये तो यह जनता जाती थी किन्तु उसके अन्दर होनेवाले कार्य-व्यापार को जानने के लिये एक तरफ जहाँ संस्कृत काल में रंगमंच पर नाट्यों की भाषा संस्कृतनिष्ठ होती वहीं दूसरी जगह निम्नवर्ग के लोग रंगशाला से निकलकर अपना रंगमंच तैयार करते और अपने लिये मनोरंजन करते तथा इसमें उनकी अपनी भाषा का प्रयोग होता। जिस प्रकार देवताओं की रंगशाला में नाट्य को प्रारंभ करने से पूर्व दस अनुष्ठान किये जाते व प्रमुख देवताओं की पूजा की जाती उसी प्रकार लोक रंगमंच पर भी नाट्य से पूर्व देवताओं की पूजा जरूर करते थे। नाट्यशैली रंगमंच पर अलग-अलग होती थी तथा वेशभूषा भी अलग-अलग तरह की पहनी जाती थी। एक बात में समानता यह थी कि नाटक से पूर्व दोनों ही जगह रंगमंच को सजा दिया जाता था। अतः आम जनता ने भी अपने लिये कभी खुले आकाश में लकड़ी का चबूतरा बनाया व कभी पेड़ के नीचे ही अपने नाट्यों को खेला। इस तरह यह रंगमंच देहाती जनता के दैनिक जीवन का एक अंग बन गया। आज जब संस्कृत रंगमंच खत्म सा हो गया है, किन्तु फिर भी लोकरंगमंच ने अपना अस्तित्व बनाये रखा है। केवल माध्यम अलग-अलग हो गये हैं व इसका स्वरूप बदल गया है। इस रंगमंच का विकास भी तीव्र गति से हुआ है। और सम्पूर्ण भारत में विभिन्न भाषाओं में ही रंगमंच पर नाट्य होते रहे हैं। ये नाट्य कभी मेलों में तो कभी उत्सवों में या फिर किसी विशेष दिन पर खेले जाते हैं। रंगमंच को भी नाट्य की प्रस्तुति में एक लम्बा व्यवधान झेलना पड़ा जब मध्यकाल में इस पर रोक सी लग गई। कालान्तर में पारसी रंगमंच आधुनिकता और पाश्चात्य शैली को लेकर भारत की पृष्ठभूमि पर उतरा। इसके चलते रंगमंच और नाट्यों की होड़ सी लग गई। तथा भारत में फिर तीव्र गति से आन्दोलन छिड़ गया। इस रंगमंच पर भड़कीली वेशभूषा और आँखों में चुभनेवाली रूप-सज्जा तथा नये-नये यंत्रों के प्रयोग व चमत्कृत कर देनेवाले दृश्य थे। इनकी अपनी नाट्यशैली थी। जिसका प्रभाव भारत की सांस्कृतिक

पृष्ठभूमि पर पड़ा। इन नाट्यशैलियों ने अपना वर्चस्व रंगमंच पर जमा लिया था। हम कह सकते हैं कि इतने लम्बे व्यवधान के बाद हमें इसी रंगमंच ने प्रोत्साहित और उत्साहित किया। अपने लिये फिर एक रंगमंच को तलाशने का। भारतेन्दु ने इस नये रंगमंच की पहल की जिसमें एक स्वस्थ परम्परा का उद्देश्य सामने रखा गया। उन्होंने अपना रंगमंच तैयार किया। स्वयं नाट्य लेखन की ओर अग्रसर हुए तथा उनके रंगमंच से संबंधित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। रंगमंच पर मंगलाचरण की व्यवस्था नाट्य के पहले देवी-देवताओं की स्तुति, प्रारंभ में नाटक का संक्षिप्त विवरण, प्रवेश और प्रस्थान आदि के नियमों का पालन किया गया। उनके इस स्वस्थ रंगमंच को देखकर अनेक हिन्दी साहित्यकार इस नाट्य-साहित्य को लिखने की ओर प्रेरित हुए तथा इसी समय कई नाट्य-संस्थायें भी अस्तित्व में आई जो रंगमंच के विकास में अपना सहयोग देना चाहती थीं।

19वीं शताब्दी में जिस अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत में रंगमंच की पहल पारसी रंगमंच से की उसका असर हमारी संस्कृति व नाटकों पर तो पड़ा किन्तु ऐसा नहीं था कि इस रंगमंच ने हमें कुछ नहीं दिया। नई तकनीक, नये यंत्र जिसका प्रयोग आज भी हमारे रंगमंच पर हो रहा है वह सब इसी की देन है। भारतेन्दु, प्रसाद आदि नाटककारों ने इसे रंगमंच पर एक साकार रूप प्रदान किया।

पारसी रंगमंच की भारत में व्यावसायिकता का दौर प्रारंभ किया तथा पृथ्वी थियेटर के बाद भारत में व्यावसायिकता का दौर पूर्ण रूपेण रंगमंच पर छा गया। नई तकनीकी का विकास और नयी-नयी रंगमंच संस्थाओं का निर्माण भारत में हुआ। कुछ नाट्य संस्थायें रंगमंच पर ज्यादा प्रदर्शन तो नहीं कर पाईं किन्तु इस पृथ्वी थियेटर ने ही अपने नये नाटकों एवं नये विषयों को रंगमंच पर प्रस्तुत किया व इस रंगमंच की परम्परा को आगे बढ़ाया।

पृथ्वीराज कपूर अपने नाटकों को दूर-दूर लेकर गये और रंगमंच पर इसकी

प्रस्तुतियाँ भी कीं। किन्तु जिन नाटकों की प्रस्तुतियाँ उन्होंने की उसका विवरण हमें नहीं मिलता। क्योंकि ये वे नाटक थे जो सिर्फ पृथ्वीराज के लिये ही लिखे जाते थे। कुछ एक-दो नाटकों की प्रतिलिपियों से ही उनके रंगमंच का आंकलन किया जा सकता है। 1960 के पश्चात् उस समय आर्थिक अभाव के कारण उन्हें यह रंगसंस्था बंद कर देनी पड़ी थी। आज उन्हीं की परम्परा में शशीकपूर की बेटी संजनाकपूर इस नाट्य संस्था को पुनः संचालित कर रही है।

इस बीच ऐसे नाट्य रंगमंच पर प्रदर्शित हुए जिनमें कथ्य का कोई अतापता नहीं था। भाषा में कठिन शब्दों का प्रयोग होता तथा किसी भी संवाद के बाद मध्य में ही यह नाटक खत्म हो जाते। इस प्रकार के नाट्यों और संवादों के लिये एब्सर्ड थियेटर को ही उत्तरदायी माना गया। इसे जनता में रंगमंच के प्रति जो भावनायें थीं वह कम होने लगीं और रंगमंच दर्शक फिल्म व अन्य साधनों की ओर मुड़ने लगे।

इन सबको देखते हुए एक दौर और आया वह था नुक्कड़ नाटकों का। समाज में बढ़ते अत्याचारों, रुढ़ि विचारधाराओं, पुरानी परम्पराओं और धार्मिक विरोधाभास आदि विद्रोह के स्वरों को बंद नाट्यगृह से निकालकर खुली सड़कों पर लाया गया और जगह-जगह ये नुक्कड़ नाटक व रंगमंच तैयार हो गये। खुले आकाश में जनता के बीच ढोलक, पेटी (हार्मोनियम) लेकर कुछ लोक टोलियाँ बनाकर निकल पड़े जनता के बीच। उन्हीं के मध्य रहकर उन्होंने अपनी व राष्ट्र में बढ़ रही ज्वलंत समस्याओं को नाटक के माध्यम से कहा।

इसी तरह रात में खुले आकाश के नीचे जिस रंगमंच को बनाया गया वह पूर्ण आधुनिक था। आज भी ऐसे रंगमंच पर बड़े-बड़े नाटकों की प्रस्तुतियाँ यदाकदा देखने को मिल ही जाती है। इस बहुधरातलीय रंगमंच पर अधिक विस्तार होने के कारण ज्यादातर ऐतिहासिक नाटकों को ही खेला जा सकता है।

1960 के बाद इस नयी सोच से नाट्य एवं रंगमंच के विभिन्न पहलुओं की चर्चा सामने आयी और युवा कलाकारों ने अपने-अपने नाटकों में रंगमंच को खोजना प्रारंभ कर दिया। इसी बीच प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक जो पहले सिर्फ पठनीय थे उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाने लगा तथा किसी भी नाट्य की प्रस्तुति से पूर्व उसे भाषा,कथानक, रंगविधान, दृश्यविधान, प्रकाश, ध्वनि आदि दृष्टियों से परखा जाने लगा। नाटक लिखनेवाले रंगमंच की तर्ज पर अपने नाटकों को ढालने लगे।

आज का रंगमंच इसी कारण अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया है। नाटककार, निर्देशक आदि सभी रंगमंच की बारीकियों पर ध्यान देने लगे हैं। नाटक यदि रंगमंच पर खेलने के लिये है तो उसका कथोपकथन संक्षिप्त हो और उसे रंगमंच पर क्रियान्वित किया जा सके किन्तु नाटक में ऐसे भी स्थल आते हैं जहाँ विस्तार आवश्यक हो जाता है वहाँ नाटककार एवं निर्देशक की सूझबूझ और उनकी रंगमंच के प्रति समझ ही काम आती है।

शिल्प की दृष्टि रंगमंच के लिये आवश्यक है क्योंकि इसी के माध्यम से नाटक को प्रभावी बनाया जा सकता है। आज के रंगकर्मी नाटककार इसे प्रत्यक्ष व भौतिक आधार देकर इसके स्वरूप को रंगमंच पर अधिक स्पष्टता प्रदान करने में लगे हैं। दृश्य परिवर्तन के समय नये प्रयोग को ध्यान में रखा जा रहा है तथा रंगमंच पर बड़े-बरे सेट्स लगाये जा रहे हैं। प्रकाश की नई तकनीक आज दर्शकों को थियेटर की ओर पुन: लौटने पर मजबूर कर रही है। स्पॉट लाइट, डिमर आदि जैसे माध्यमों ने रंगमंच पर अपना अधिकार जमा लिया है।

नाटक के मध्य में संगीत या फिर प्रारंभ से ही संगीत एवं नृत्य के द्वारा दर्शकों को अपनी ओर खींच लिया जाता है। ढोल, नगाड़े आदि वाद्य यंत्रों से नाटक में छिपे द्वेष व विद्रोह की भावना को जागृत कर दिया जाता है जिसे देखकर दर्शकों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यही विशेषता दर्शकों को सोचने पर मजबूर कर रही है कि रंगमंच

उसके करीब है या फिल्म आदि मिड़िया।

रंगमंच पर जब विभिन्न विषयों पर नाटक एवं नाटककारों की नई-नई नाट्य प्रस्तुतियाँ होने लगीं तो नाटक निर्देशक के सामने तकनीकी दृष्टि से नये यंत्रों को संचालित करने का बहुत बड़ा प्रश्न सामने खड़ा हो गया है। अतः निर्देशक सर्वप्रथम अपनी रंगसंस्था में विभाग कर सभी को प्रशिक्षण देते हैं। जो कलाकार जिस विधा में पारंगत हो जाता है उसे उसका कार्य सौंप दिया जाता है ताकि वह अपना कार्य लगन एवं मेहनत से कर सके। निर्देशक अपने नाटक में रंगमंच प्रस्तुति से पूर्व रिहर्सल के दौरान समूह संरचना, मंच विधान, प्रकाश, संगीत आदि सभी माध्यमों पर अपनी कड़ी नजर रखता है जिससे उसके नाटक की प्रस्तुति सफलतापूर्वक रंगमंच पर हो सके।

रिहर्सल के दौरान एक सफल निर्देशक ही नाटक को अच्छी तरह से स्वयं पढ़ता है और तीन-चार बार अध्ययन करने के पश्चात उसके लिए एक नीति तैयार करता है। जिसमें वह सर्वप्रथम कलाकारों को नाटक की स्क्रिप्ट पढ़वाकर उसका टेस्ट लेता है और इसी दौरान वह पात्रों का निर्णय कर, किसे कौन-सा रोल करना है वह बताता है तथा एक-एक स्क्रिप्ट की कॉपी कलाकारों के हाथ में सौंप देता है। अपने निर्देशन के दौरान वह पूर्ण कोशिश करता है कि उसे एक कड़ी में बाँध सके। यह रिहर्सल सात दिन में भी पूर्ण हो सकती है नहीं तो एक महिना भी इसमें लग सकता है। यह समय अवधि कुशल निर्देशन के ऊपर होती है।

दृश्यबंध को सुनियोजित ढंग से बनाना व इसका रंगमंच पर प्रयोग निर्देशक की देखरेख में ही पूर्ण किया जाता है। इसके अतिरिक्त आलोकन, वेश-विन्यास, रूपसज्जा आदि रंगमंच के पर्याय बन चुके हैं जिन्हें नाटक के विशेष प्रभाव के लिये प्रयुक्त किया जा रहा है।

चालीस वर्षों के इस समय के बाद आज तक रंगमंच पर कई उतार-चढ़ाव आये और नये प्रयोग सामने आये। जनता के बीच, जनता के मध्य इस रंगमंच ने अपनी अलग जगह बनाने का प्रयास किया है। एक अलग दर्शकवर्ग तैयार कर लिया है जो आधुनिकता आने पर भी रंगमंच से जुड़ा हुआ है। भले ही दर्शक दूसरे नवीन माध्यमों (फिल्में और टेलिविज़न) की ओर आकर्षित हो रहा है, किन्तु फिर भी रंगमंच से अपने को अलग नहीं कर सका है।

हिन्दी नाट्य जगत के लिये यह दुखद हो सकता है, क्योंकि आज भी रंगमंच तो वही है किन्तु इस पर प्रादेशिक भाषा के नाटकों ने अपना अधिकार जमा लिया है और हिन्दी को अपना रंगमंच एकबार फिर खोजने निकलना पड़ा है।

पहले के दशकों में रंगमंच पर ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विषयों के नाटकों को अलग-अलग शैली और अलग-अलग रंगमंच पर खेला जाता था। अब इस रंगमंच के लिये कोई बन्धन शेष नहीं रह गया है।

मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, जगदीशचन्द्र माथुर जैसे नाटककारों ने जिस रंगपरंपरा को आगे बढ़ाया उनमें आगे चलकर और कई नाटककारों के नाम जुड़ गये, जिन्होंने रंगमंच को एक नया आयाम देने का प्रयत्न किया और उसे रंगमंच से जोड़ दिया। उनमें प्रमुख रूप से श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, हबीब तनवी, डॉ. कुसुम कुमार, मणि मधुकर, शंकर शेष आदि नाटककार हैं।

नाटककार, निर्देशक आदि सभी रंगमंच के लिए नाटकों को लिखने लगे हैं। एक नाटक को शिल्प, दृश्य विधान, प्रकाश-योजना, ध्वनि योजना आदि रंगमंचीय माध्यमों से परखा जाने लगा है।

शिल्प की दृष्टि से नाटक को प्रभावशाली बनाने के लिए रंगमंच पर इसका

विशेष ध्यान दिया जा रहा है। रंगकर्मी भी नाटककार के द्वारा प्रयुक्त रंगशिल्प को प्रत्यक्ष व भौतिक आधार देकर उसके स्वरूप को रंगमंच पर अधिक स्पष्टता प्रदान करने लगे। रंगमंच पर नाट्यों के दृश्य-परिवर्तन के समय निर्देशकों ने नई-नई तकनीकों को प्रयोग में लाया गया है। प्रकाश के माध्यम से या फिर पर्दे के माध्यम से रंगमंच पर चल रहे नाटक में दृश्य परिवर्तित किये जाने लगे। बड़े-बड़े सेट्स रंगमंच पर लगाये जाने लगे हैं।

आज आलोकन रंगमंच का पर्याय बन चुका है। बिना आलोकन के नाटक निरर्थक लगते हैं। इसलिये इसे बन्द प्रेक्षागृहों में या खुले आकाश में रात को खेला जाता है। नये-नये यन्त्र इस क्षेत्र में आ गये हैं जैसे - फोकस, हेलोजन, स्पॉट लाइट्स, बीम लाईट इत्यादि।

मुखौटों का प्रयोग रंगमंच में अभिनय के साथ किया जाता है। अधिकतर मुखौटे कपड़े, प्लास्टिक, पोलिस्टर, फाईबर ग्लास आदि के बने होते हैं। कभी-कभी अभिनेताओं को इन मुखौटों का प्रयोग रंगमंच पर करना पड़ता है।

छठा दशक रंगमंच के उत्थान का दशक था। जिसमें मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, जगदीशचन्द्र माथुर आदि नाटककारों ने अपने नाट्यों में रंगमंच को एक सार्थक दिशा देने का कार्य किया। इन नाटककारों ने नाट्य निर्देशकों के साथ मिलकर अपने लिये रंगमंच का निर्माण कराया। जगह-जगह रंगप्रयोग किये जाने लगे। उदाहरण के लिये - अन्धा युग को खण्डहरों में खेला गया तो कोणार्क जैसे ऐतिहासिक नाटक को बन्द नाट्यगृह में खेला गया।

सातवें दशक में भी इन्हीं नाटककारों के नाटकों का जोर था। नये नाटककार नये विषय और नयी नाट्यशैली लेकर आये। यह दशक रंगमंच के लिये सोने की खान साबित हुआ। इस समय के रंगमंच पर नाट्य निर्देशक को अपनी तरह से विभिन्न प्रयोग करने की पूरी छूट मिल गई थी। इसका फायदा भी सफल

निर्देशकों ने उठाया। जैसे आधे-अधुरे नाटक में एक ही अभिनेता को चार-चार भूमिकाओं में हमारे सामने रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। तथा रवि वासवानी जैसे निर्देशक रंगमंच पर अपने नाट्य प्रयोग के दौरान सभी कलाकारों को काले कपड़े पहनाकर एक सफल प्रस्तुति देते हैं।

आठवें दशक में भी रंगमंच पर कई प्रयोग इसी तर्ज पर हिन्दी नाटकों में किये गये, फिर नवें एवं दसवें दशक के नाटकों में रंगमंच तो था परन्तु हिन्दी नाटकों की कमियाँ होने लगी। अधिकतर अनुवादित नाटकों को ही रंगमंच पर खेला गया। कुछ हिन्दी नाटककार निर्देशक भी अनुवादित नाटकों की ओर बढ़े अतः ऐसे समय में भी आज रंगमंच पर हिन्दी नाटकों की प्रस्तुतियाँ निर्विघ्न रूप से चल रही है।

प्रकाश योजना इस समय नाटक का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। रंगमंच पर पहले मशालें जला करती थीं। बाद में गैस के हण्डे जलने लगे और जब बिजली आई तो प्रकाश व्यवस्था रंगमंच पर छाने लगी। प्रकाशीय उपकरणों का उपयोग भी रंगमंच पर विभिन्न प्रकार से होने लगा है। और यह माध्यम तो इसका विशेष अंग बन गया है।

एक महत्वपूर्ण बात यह दिखाई देती है कि आज भी रंगमंच पर लोकसंस्कृति की महक लोकनाट्यों के रूप में दूरदराज के ग्रामीण अंचलों से साफ आ रही है। लोक रंगमंच की इसी सहज एवं सदृढ़ परम्परा ने शिष्ट नाटकों को प्रभावित किया है। इस लोक रंगमंच के प्रभाव से नाटकों की एक स्वच्छ परम्परा चल पड़ी है। प्राचीन समय से चली आ रही यह परम्परा आज भी एक ताजे फूल की तरह अपनी सुगंध फैला रही है। लोकनाट्य आधुनिक रूप धारण कर रहे हैं। नये शिल्प, नये विषय लेकर ये लोकनाट्य अपने-अपने प्रदेशों में वर्चस्व प्रतिस्थापित कर रहे हैं। आज भी इस लोकनाट्य रंगमंच की धारा सतत प्रवाहित हो रही है। और यह धारा

विदेशों में भी फैल रही है। इस श्रेणी में तिजनबाई, गिरिराज प्रसाद आदि कलाकारों के नाम आते हैं जो इन शैलियों को विदेशों में फैला रहे हैं। तिजनबाई को को तो इस क्षेत्र में अपने कार्य के लिये हाल ही में डी.लिट. की उपाधि से भी सम्मानित किया जा चुका है।

लोकनाट्य शैली ने संगीत, नृत्य आदि सभी को अपने आधुनिक रूप में ढाल लिया। ये लोकनाट्य प्रदेशों में अपनी-अपनी भाषाओं के अनुरूप प्रस्तुत होने लगे और नयी-नयी लोकनाट्य शैलियाँ रंगमंच पर प्रयोग में लायी जाने लगीं। यह लोकशैली व रंगमंच आधुनिकता लिये है।

जैसे नौटंकी शैली में लिखा गया श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' है, जिसमें गाँव की समस्याओं को दर्शाया गया है और यह नाटक जब भी बड़े महानगरों में खेला वहाँ के लोकशिल्प भी इसने ग्रहण किये। इसी तरह मणि मधुकर का 'दुलारीबाई' भी कुचामणी ख्याल में लिखा हुआ है। इसमें एक ओर पारसी शैली में संवाद बोलने की प्रथा का भी प्रयोग है, दूसरी ओर लोकगीतों की धुन पर गीत रचना हुई है। इस नाटक में भी लोकनाट्य शैली का प्रयोग किया गया है। इसी तरह अन्य कई नाटक हैं जिन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटकों को लोकनाट्यों की शैली में जोड़ दिया तथा गाँवों और महानगरों दोनों ही जगह रंगमंच पर अपने प्रयोग किये हैं। 'आला अफसर' (श्री मुद्राराक्षस), 'चरनदास चोर' (श्री हबीब तनवीर), 'पोस्टर' (डॉ. शंकर शेष) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

इन आधुनिक हिन्दी नाटकों पर लोकनाट्यों का प्रभाव पड़ने का मुख्य कारण रहा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ। इन परिस्थितियों में लोक रंगमंच ने जनमानस में जागरुकता का संदेश दिया तथा अपनी लोकसंस्कृति को पहचाना। भारत में ब्रेख्त आदि पाश्चात्य नाटककारों के रंगमंच से प्रभावित होकर भी एक नये रंगमंच की तलाश की।

रंगमंच को शैशवकाल से लेकर प्रौढ़ अवस्था के बीच कई दौरों से गुजरना पड़ा है। इसलिये रंगमंच के सामने हमेशा उसके खड़े रहने की संभावनाओं पर प्रश्नचिन्ह रहा है। मीड़िया ने अपना वर्चस्व रंगमंच पर स्थापित करने का प्रयत्न तो किया है जिससे स्वाभाविक तौर पर नाटकों के रंगमंच के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है। दर्शकों को तीन घण्टे में ही सभी तरह का मनोरंजन फिल्म के पर्दे पर मिलने लगा है तो जनता उस तरफ आकर्षित हुई है। एक बहुत बड़ा वर्ग रंगमंच के अलग हो गया है।

प्रादेशिक भाषाओं के नाटक रंगमच पर कमाल कर रहे हैं। और व्यावसायिक तौर पर अपने को आगे बढ़ा रहे हैं। हिन्दी रंगमंच पिछड़ रहा है। नाटकों में गिरावट की वजह से व्यावसायिक तौर पर आज ये नाटक नहीं चल पा रहे हैं। हिन्दी नाट्य साहित्य इसके अवसान का कारण बन सकता है लेकिन रंगमंच अपनी जगह स्थिर है। पैसों की कमी के कारण कई हिन्दी नाट्य रंगसंस्थायें बंद हो गयी हैं किन्तु यह समस्या तो रंगमंच पर हमेशा रही है। परन्तु फिर भी आज निराशा के बीच आशा की किरण धूमिल नहीं हुई है। कई रंग-संस्थाओं को राज्यस्तर पर मदद मिल रही है और ये संस्थायें निरंतर रंगकर्म से जुड़ी हुई हैं। तथा अपनी पहचान बना रही हैं।

व्यावसायिकता की दृष्टि से आज के रंगमंच को देखा व परखा जाने लगा है। अनेक नाट्यकर्मी आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हुए भी रंगमंच से पूरी ईमानदारी और समर्पण के साथ जुड़े हुए हैं - 'एकजुट', 'युगमंच', 'भारत भवन', 'रा. ना. विद्यालय' आदि सक्रिय रूप से नाट्य लेखन, निर्देशन एवं प्रस्तुति से जुड़े हैं।

भारत के विभिन्न प्रान्तों में ये रंगसंस्थायें सरकारी एवं अर्द्धसरकारी दोनों प्रकार की हैं। भारत की इन विभिन्न रंगसंस्थाओं में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण कला के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने के लिये दिया जाता

है। इन संस्थाओं का योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

अतः रंगमंच तो आज भी उतना ही प्रभावशाली है जितना पहले रहा है। हमारे नाट्य निर्देशकों में केवल मानसिक बदलाव आये हैं अपनी भाषा के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति। आर्थिक अभाव के कारण हिन्दी रंगमंच पर कुछ प्रभाव जरूर पड़ा है किन्तु इससे यह कर्त निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि हिन्दी रंग जगत अब समय की गर्त में अपने अस्तित्व को खोता जा रहा है। रंगमंच कभी खत्म नहीं होगा, केवल इस पर होनेवाली प्रस्तुतियों और नाट्यों में बदलाव लाने की ओर ही हमें जोर देना होगा।